eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 1, Issue 10, October 2022

स्त्री शरीर का विमर्श और उत्तर आधुनिक बाजार

[1]डॉ. आशुतोष कुमार राय
[1]असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी) राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिरसागंज, फ़िरोज़ाबाद

Abstract

विमर्श तकनीकी अर्थों में मूल बल इस बात पर देता है कि स्त्री, पुरुष वर्चस्व से मुक्त होकर पुरुषों के बराबर राष्ट्रीय और सामाजिक विकास में अपनी भूमिका निर्धारित करने के लिए शक्ति संपन्न हो सकें। जहां तक उत्तर आधुनिकता की बात है वह किसी भी नैतिकता दृअनैतिकता, वास्तविकता–मिथ्या, ऐतिहासिकता दृअनैतिहासिकता, सुरुचि – कुरूचि , कुरूपता– रूपता जैसे विभाजक अंतरालों को समाप्त कर देता है। जहां मूल्य बोध एक शब्द मात्र बनकर रह जाता है। उत्तर आधुनिकता हर चीज को पाठ मानकर उसकी व्याख्या पाठक केंद्रित कर देती है, अर्थात हर रचना एक पाठ है और उसका वही अर्थ नहीं होता जो उसमें है, बल्कि वह हर पाठक के निजी अनुभवों, परिस्थितियों, सोच और स्तर के हिसाब से बदलती जाती है।उत्तर आधुनिक तर्कों, निष्कर्षों को व्यावहारिक और व्यापक बनाने में सबसे बड़ी भूमिका सूचना और संचार प्रौद्योगिकी ने निभाई है। सैटेलाइट चौनलों ने जो उपभोक्तावादी संस्कृति रची है, वह इसी उत्तर पूंजीवादी रणनीति का हिस्सा है। सूचना क्रांति ने पूरी दुनिया को ही एक उपभोक्ता वर्ग में बदल दिया, इसलिए विभिन्न देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए इस उपभोक्ता वर्ग को अपने अपने उत्पादों की खरीदने के लिए प्रेरित करना आवश्यक हो गया। इस प्रतिद्वंदिता में यह कंपनियां अपने उत्पादों के अधिकाधिक पहुंच को सुनिश्चित करने के लिए विज्ञापन तंत्र का सहारा लेती हैं और विज्ञापन तंत्र का सबसे बड़ा हथियार है –स्त्री देह।

इस विज्ञापन तंत्र द्वारा स्त्री देह को बाजार की हर वस्तु का मानदंड बनाने के पीछे दो कारण हैं। एक तो यह कि इससे स्त्रियों को तथाकथित प्रोग्रेसिव, बोल्ड और बिंदास होने का छद्म आभास करा पाता है और दूसरे वह पुरुष के लिए सनसनाहट पैदा कर उत्तेजित आनंद देने वाली हो जाती है। चूँकि वर्जित फल को चखने की कल्पना ही उत्तेजना पूर्ण आनंद से भर देती है अतः स्वाभाविक ही है कि पुरुष उस उत्पाद की तरफ आकर्षित हो। इस प्रक्रिया में स्त्री देह का उन्मुक्त प्रदर्शन लगातार जारी रहता है। स्त्री विमर्श का देह विमर्श तक सिमट जाना एक खतरनाक और भयावह स्थिति को जन्म देता है जिसके लिए उत्तर आधुनिक बाजार हमेशा प्रयत्नशील है। इसलिए स्त्री विमर्श जो अपने मूल में एक समाजशास्त्रीय विमर्श है, को बाजार के कब्जे से स्वयं को मुक्त कर सजग रूप से बाजार का उपयोग स्त्री मुक्ति के अन्य मोर्चों पर फतह हासिल करने के लिए सीखना होगा।

बीज शब्द – उत्तर आधुनिकता, उत्तर पूंजीवाद, स्त्री विमर्श, देह विमर्श, मूल्यबोध, संस्कृति बोध।

Introduction

उत्तर आधुनिकता एक कालवाची प्रत्यय से अधिक एक पारिभाषिक पद भी है और कई चिंतन समूहों का गुच्छ भी जिसमें उत्तर संरचनावाद, उत्तर औपनिवेशिकता, प्राच्यवद, स्त्री चिंतन, दलित

चिंतन जैसे विमर्श सम्मिलित है। पर इस लेख में इन वादों की पारिभाषिक विवेचना करना लक्ष्य नहीं बल्कि यह देखना महत्वपूर्ण है कि उत्तर आधुनिकता से जन्मे उत्तर पूंजीवादी बाजार ने,अपने साथ जन्मे स्त्री विमर्श को किस तरह स्त्री मुक्ति के विमर्श से उतारकर स्त्री देह मुक्ति के स्तर पर ला खड़ा किया है और इस विस्तरीकरण में उस बाजार का अपना क्या लाभ है तथा स्त्री सशक्तिकरण जैसे मुद्दों को कैसी सावधानी बरतनी पड़ेगी।

स्त्री विमर्श तकनीकी अर्थों में मूल बल इस बात पर देता है कि स्त्री, पुरुष वर्चस्व से मुक्त होकर पुरुषों के बराबर राष्ट्रीय और सामाजिक विकास में अपनी भूमिका निर्धारित करने के लिए शक्ति संपन्न हो सकें। जहां तक उत्तर आधुनिकता की बात है वह किसी भी नैतिकता – अनैतिकता, वास्तविकता–मिथ्या, ऐतिहासिकता – अनैतिहासिकता, सुरुचि – कुरूचि, कुरूपता–रूपता जैसे विभाजक अंतरालों को समाप्त कर देता है। जहां मूल्य बोध एक शब्द मात्र बनकर रह जाता है। उत्तर आधुनिकता हर चीज को पाठ मानकर उसकी व्याख्या पाठक केंद्रित कर देती है, अर्थात हर रचना एक पाठ है और उसका वही अर्थ नहीं होता जो उसमें है, बल्कि वह हर पाठक के निजी अनुभवों, परिस्थितियों, सोच और स्तर के हिसाब से बदलती जाती है। अगर हम यही तर्क स्त्री विमर्श पर लागू करें तो एक अजीब स्थिति पैदा होगी। एक स्त्री चिंतक जिस स्त्री मुक्ति की बात करता है, अगर उसको हम पाठ मान ले तो क्या एक स्त्री के लिए उस पाठ का जो अर्थ होगा वहीं पुरुष होने के तर्क से एक पुरुष के लिए भी होगा ? स्पष्टतः नहीं। तो फिर स्त्री विमर्श का पुरुष के लिए क्या मतलब निकलता है? खैर, बात यहां उत्तर पूंजीवादी बाजार की हो रही थी। उत्तर पूंजीवादी बाजार भी अपने अधिकतम लाभ के लिए किसी भी मूल्य, नैतिकता या उत्तरदायित्व को स्वीकार नहीं करता और उत्तर आधुनिकता तो अपने मूल में ही इस तरह के महाशब्दों का विरोध करता है जिसके इर्द–गिर्द एक विशेष व्याख्या लिपटी हो। अतः इस उत्तरआधुनिक विचार प्रणाली ने इस आधार पर उत्तर पूंजीवादी बाजार को तत्काल बौद्धिक और वैचारिक स्तर पर वैधता प्रदान की। फ्रेडरिक जेम्सन ने 1984 में लिखे अपने लेख 'उत्तर आधुनिकता या उत्तरजीवी पूंजीवादी का सांस्कृतिक तर्क' में उत्तर आधुनिकता की आलोचना करते हुए उसे एकाधिकारवाद पूंजीवाद का सहजीवी बताया।[1] उत्तर आधुनिक तर्कों, निष्कर्षों को व्यावहारिक और व्यापक बनाने में सबसे बड़ी भूमिका सूचना और संचार प्रौद्योगिकी ने निभाई है। सैटेलाइट चैनलों ने जो उपभोक्तावादी संस्कृति रची है, वह इसी उत्तर पूंजीवादी रणनीति का हिस्सा है। उत्तर पूंजीवादी दौर के बाजार एवं संचार माध्यम के कुचक्री गठजोड़ में स्त्री मुक्ति का प्रश्न कितना विसंगति पूर्ण हो गया है इसे विजय मोहन सिंह ने बड़ी सूक्ष्मता से उभारा है । उनका कहना है कि "एक ओर यही संचार माध्यम स्त्री को वस्तु के रूप में परिवर्तित करने का उग्र विरोध करने के लिए बड़े–बड़े मुकाबले (बिग फाइट) आयोजित करा रहा है और दूसरी ओर सारी वस्तुओं का विज्ञापन कामोत्तेजक स्त्री मुद्राओं तथा भंगिमाओ तथा युवतियों के द्वारा किया जा रहा है वे स्त्री को लगातार वस्तु बनाकर परोस रहे हैं। स्त्री निरंतर पण्य (बिकाऊ) है, चाहे जिस रूप में।"

इस विडंबना का सबसे दिलचस्प (हालाँकि सबसे पैथेटिक) रूप यह है कि स्त्रियों का एक बहुत बड़ा समुदाय इसे भी वूमेन लिब (स्त्री की मुक्ति) का अंग मानकर उस में सहयोग दे रहा है। यह संचार माध्यम अब ऐसी सूचनाओं को भी आवृत्तिमूलक घोषणाओं के साथ प्रकाशित करने लगे

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 1, Issue 10, October 2022

हैं जहां कोई किशोरी अपने कौमार्य (वर्जिनिटी) की बोली इस हाट में लगा रही हैं।" जो भी अधिकतम कीमत देगा उसे वह अपना कौमार्य बेच देगी। बचकाना बहाना (या फिर मुखौटा) यह कि वह आगे पढ़ना, बढ़ना और अपना कैरियर बनाना चाहती है।"[2] नताली डायलॉन (छद्म नाम) नामक इस युवती का जो महिला अध्ययन में स्नातक डिग्री धारी है, का तर्क सुनिए—" हम एक पूंजीवादी समाज में रहते हैं। मैं अपने कुंवारेपन से पूंजी क्यों न जुटाऊँ? मुझे पता है कि कुछ लोग इसकी निंदा करेंगे। मगर मैं समझती हूं इससे मैं सशक्त होऊँगी। मैं वही उपयोग कर रही हूं जो मुझे अपने को बेहतर बनाने के लिए करना है।"[3] वस्तुतः यह तर्क उसका ही नहीं, इस उपभोक्तावादी दौर में जी रही हर लड़की का है। डॉ. रोहिणी अग्रवाल के शब्दों में —"देह उसकी पूंजी है, पहचान है और जीने का आधार भी। वह जानती है कि सौंदर्य प्रतियोगिताओं तक इस देह को पहुंचा कर वह मॉडलिंग और फिल्म क्षेत्र में नाम और दाम दोनों कमा सकती है और उपभोक्तावाद के इस दौर में शिखर पर वही है जो पूंजी का उत्पादन, निवेश और प्रबंधन करने में माहिर है।"[4] सुनने में बड़ा अटपटा लगता है परंतु ऊपर जो उदाहरण दिया गया है उसकी थोड़ी गहराई से विश्लेषण करें तो क्या यह प्राचीन काल की नगरवधू संस्कृति या नथ उतारने जैसी परंपरा का भव्य, वैश्विकृत, तथाकथित बोल्ड और आधुनिक रूप नहीं है? विजय मोहन सिंह अपने उसी लेख में आगे कहते हैं —"उत्तर पूंजीवादी व्यवस्था का यह बाजार स्त्री को और उसके साथ समाज को फिर उसी बगदाद के बाजार में ले जा रहा है जहां से वह बिकना शुरू हुई थी। यानी एक नई गुलाम व्यवस्था की शुरुआत।" तो यह है उत्तर आधुनिक बाजार का चरित्र और देह केंद्रित स्त्री विमर्श का वह स्याह पक्ष जिसकी तरफ स्त्री मुक्ति के तथाकथित चिंतक जो अपने मिशनरी उत्साह के झोंके में ध्यान नहीं देते। उत्तर आधुनिक बाजार का यह षड्यंत्र किस तरह प्रबुद्ध वर्ग के स्त्री चिंतकों को भी अपने घेरे में ले लेता है इसका एक उदाहरण तस्लीमा नसरीन की पुस्तक 'औरत के हक में' से देना चाहूंगा —"मैं स्त्री चित्रकारों को स्त्री की आकर्षक काममय तस्वीर बनाते देखती हूं , स्त्री लेखिकाओं को देखती हूं स्त्री के रूप वर्णन में बिल्कुल पुरुष की तरह सिद्धहस्त । तो फिर पुरुष के रूप का वर्णन कौन करेगा ? पुरुष के शरीर को बिकाऊ बनाने से पुरुषों के इस्तेमाल की बिकाऊ वस्तुओं का उत्पादन और बिक्री भी काफी जोरदार होगी । क्रेता हमेशा एक पक्ष ही क्यों रहे? क्रेता और विक्रेता अपनी विक्रय सामग्री को लेकर दूसरी तरफ विक्रेता और क्रेता भी हैं । वरना इस कारोबारी दुनिया में एक पक्ष को हमेशा लाभ और दूसरे पक्ष को हमेशा हानि होगी।"[5] स्वयं मैत्रेयी पुष्पा भी उपभोक्तावादी बाजारवादी चरित्र के खिलाफ अपनी भूमिका को लेकर सजग नहीं है । स्वयं उन्हीं के शब्दों में "टीवी पर विज्ञापनों में लड़कियां आती हैं, छोटे कपड़े पहनती हैं ,बहुत ऐतराज है । उसमें लड़के भी आते हैं, उस पर ऐतराज नहीं है । मैं यहां उपभोक्तावाद को बढ़ावा नहीं दे रही हूं। उपभोक्तावाद, उपनिवेशवाद, वैश्वीकरण इन सब के मायने मुझे नहीं पता।"[6]

तस्लीमा और मैत्रेयी पुष्पा एक मुखर स्त्री विमर्श कार हैं, इसमें कोई संदेह नहीं । पर क्या यह सही है कि बाजार के मूल चरित्र की अनदेखी कर केवल अपने को सही साबित करने के लिए एक प्रतिशोधात्मक (न कि प्रतिरोधात्मक) औजार विकसित कर लिया जाए? जो चीज गलत है उसका विरोध होना चाहिए —चाहे वह विज्ञापन या बाजार में स्त्री और पुरुष दोनों के देह के इस्तेमाल का ही मसला क्यों ना हो। यह कहां का तर्क है कि चूँकि पुरुष ऐसा कर रहा है इसलिए स्त्रियों को भी

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 1, Issue 10, October 2022

ऐसा करना चाहिए। यह तो ठीक उसी तरह है जैसे अंग्रेजी शासनकाल के दौरान बिना अंग्रेजी शासन के चरित्र को समझें हिंदू मुसलमान आपस में लड़ते रहे जिसका परिणाम भारत विभाजन के रूप में सामने आया। कहीं ऐसा ना हो कि बाजार भी स्त्री–पुरुष को पूरक ना बनाकर प्रतिपक्ष बना दें और परिणाम....?

उत्तर पूंजीवादी बाजार अपने माल की खपत के लिए नित नए नए तरीके व नए नए उपभोक्ता वर्ग ढूंढता रहता है।। आज सूचना संचार क्रांति की वजह से पूरी दुनिया एक माउस क्लिक पर सिमट गई है। सूचनाओं के अबाध प्रवाह में कहीं कुछ गोपन या व्यक्तिगत जैसा नहीं रह गया है। जब इंटरनेट क्रांति ने पूरी दुनिया के लोगों तक अपनी पहुंच बना ली तो उत्तर पूंजीवादी बाजार के लिए पूरी दुनिया ही एक उपभोक्ता समाज में बदल गया। चूँकि सूचना क्रांति ने पूरी दुनिया को ही एक उपभोक्ता वर्ग में बदल दिया, इसलिए विभिन्न देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए इस उपभोक्ता वर्ग को अपने अपने उत्पादों की खरीदने के लिए प्रेरित करना आवश्यक हो गया। इस प्रतिद्वंदिता में यह कंपनियां अपने उत्पादों के अधिकाधिक पहुंच को सुनिश्चित करने के लिए विज्ञापन तंत्र का सहारा लेती हैं और विज्ञापन तंत्र का सबसे बड़ा हथियार है –स्त्री देह। इस विज्ञापन तंत्र द्वारा स्त्री देह को बाजार की हर वस्तु का मानदंड बनाने के पीछे दो कारण हैं। एक तो यह कि इससे स्त्रियों को तथाकथित प्रोग्रेसिव, बोल्ड और बिंदास होने का छद्म आभास करा पाता है और दूसरे वह पुरुष के लिए सनसनाहट पैदा कर उत्तेजित आनंद देने वाली हो जाती है। चूँकि वर्जित फल को चखने की कल्पना ही उत्तेजना पूर्ण आनंद से भर देती है अतः स्वाभाविक ही है कि पुरुष उस उत्पाद की तरफ आकर्षित हो। इस प्रक्रिया में स्त्री देह का उन्मुक्त प्रदर्शन लगातार जारी रहता है। हिंदी स्त्री विमर्श की पहली मुख्य प्रवक्ता महादेवी वर्मा ने एक साक्षात्कार (जनसत्ता, सितंबर 1987) में इस चीज को बड़ी पीड़ादायक बेचौनी के साथ कहा था –"आज बिना नारी के मंजन नहीं बिकता, साबुन नहीं बिकता और तो और ब्लड नहीं बिकता। जब आप व्यापार का साधन बन गई हैं तो क्या कर सकेंगी?"[7] इस बाजारवादी विमर्श को स्त्री विमर्श के किस कोण से सही ठहराया जा सकता है ? वस्तुतः पहले स्त्री सामाजिक दबाव में पण्य वस्तु थी, पर अपने घर के भीतर । परंतु अब तो वह अपनी मर्जी से पण्य वस्तु बन रही है, वह भी भरे बाजार में। इस तरह जिस स्त्री को अपने अधिकार और आत्म सम्मान के लिए पितृसत्ता के खिलाफ खड़ा होना था,आज वह बाजार के चकाचौंध में पितृसत्ता की सोची समझी साजिश में बुरी तरह फंस गई है , वह भी अपनी संपूर्ण स्वीकृति के साथ। इस बारे में डॉ. रोहिणी अग्रवाल का विवेचन यहां देना अपेक्षित है– "मीडिया के जरिए बाजार घर के अंदर तक घुस गया है और विज्ञापनों में उत्पाद से ज्यादा अपने आप को परोसती स्त्री मॉडल एक नई छवि की रचना करने लगी है जहां 6 गज की भारतीय साड़ी के स्थान पर बित्ता भर का स्कर्ट / फ्रॉक है,३। न, गोपन कुछ भी न रहा– न स्त्री की दैहिक संरचना , न गर्भधारण –प्रजनन– गर्भनिरोधक जैसे वयस्क आचार । अब देह स्त्री के लिए न लज्जा का विषय है, न खामख्वाह अपराध बोध पैदा करने वाली कोई ग्रंथि। इस स्त्री छवि ने नैतिकता की परंपरागत मान्यताओं को तहस–नहस अवश्य कर दिया है, किंतु मर्दवादी व्यवस्था के नैतिक जकड़बंदी से मुक्त नहीं हुई है वह। पुराकालीन विषकन्या की तरह वह आक्रामक, आत्मनिर्भर और प्रशिक्षित जरूर दिखती है; स्वतंत्र नहीं। उपभोक्तावाद ने उसकी देह को कपड़ों और

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 1, Issue 10, October 2022

वर्जनाओं से मुक्त किया है, किंतु साथ ही उसकी माननीय अस्मिता को उभरने भी नहीं दिया है। वह आज भी वस्तु है, देह रू ऐसी देह जो भोगने का आमंत्रण देती है, बिकने के लिए मूल्य (प्राइस टैग) स्वयं निर्धारित करती है।"[8]

स्त्री लेखिकाओं ने अपने कथा साहित्य में स्त्री की मुक्ति के तर्क को लेकर उद्दाम रति प्रसंगों और देह भाषा का जो खुला प्रयोग किया है, उसे भी बाजारवाद के संदर्भ में मूल्यांकित करने की जरूरत है। साहित्य में श्लीलता– अश्लीलता का जो प्रश्न उठाया जाता है वह मुख्यतः रचनात्मक सरोकारों का अनुषंगी होता है। कोई भी वर्णन या चित्रण तब तक अश्लील नहीं होगा जब तक वह कथ्य की समग्रता को व्यक्त करता है या उसे एक कलात्मक अनुभूति प्रदान करता है । पर जहां वह कलात्मकता और उत्तेजना की सूक्ष्म सीमा के भेद को समाप्त कर देता है अर्थात उसका वर्णन या चित्रण कृति के कथ्य को पुष्ट न करके सनसनी पैदा करने लगे (जो स्पष्ट रूप से ऊपर से थोपी गई लगती हो) तो वह न केवल कृति की संप्रेषणीयता को भंग करती है अपितु पूरे विमर्श की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाती है । कहीं कलाच्युत सिनेमाई नायिकाओं की तरह अपनी देहभाषा में कला हीनता को छिपाना तो इस तरह के वर्णन का उद्देश्य नहीं होता है? वस्तुतः स्त्री के लिए देहभाषा या रति प्रसंगों के चित्रण के लिए एक खास कलात्मक विवेक की आवश्यकता होती है । उत्तर आधुनिकता घोषित तौर पर भले ही सारे मूल्य और चरित्र को नकारता हो, पर अघोषित तौर पर वह खुद अपना एक चरित्र विकसित करता है– पैसा, जो अनिवार्य रूप से उत्तर पूंजीवाद का भी चरित्र है। कलात्मक विवेक से हीन ऐसी लेखिकाएं अपने लेखन में सनसनी पैदा करने वाले वर्णन डालकर एक पब्लिसिटी पाने की कोशिश करती हैं जिससे उनकी रचना की ग्राहक संख्या (पाठक संख्या नहीं) बढ़े और उसी अनुपात में उनकी रॉयल्टी भी बढ़े। यह भी उसी बाजारवाद का एक घृणित पहलू है। उद्दाम काम प्रसंगों के वर्णन में कलात्मक विवेक के प्रयोग को एक उदाहरण के द्वारा समझना महत्वपूर्ण होगा। स्त्री देहभाषा प्रयोग पर विचार करते हुए बच्चन सिंह ने लिखा है –"देह भाषा का प्रयोग न नष्ट है न अनिष्ट। देखना यह होगा कि वह किन तत्वों से नियंत्रित है। मृदुला गर्ग के उपन्यासों की देह भाषा अनियंत्रित होकर महज सनसनी उत्पन्न करती है। इसके विपरीत कृष्णा सोबती की देह भाषा अपने चुलबुलेपन के बावजूद अन्य तत्वों से नियंत्रित होकर गंभीरता का एहसास कराती है।"[9] मृदुला गर्ग के उपन्यास में 'चितकोबरा' और 'मैं और मैं' जैसे उपन्यास स्त्री मुद्दों से जुड़े सरोकारों को समझने के लिए नहीं पढ़े जाते, बल्कि एक वर्जनात्मक फल को चखने के उत्तेजनापूर्ण तृप्ति की चाह में पढ़े जाते हैं । प्रणय कृष्ण ने इस पर विचार करते हुए लिखा है –"उद्योगपति महेश गोयल के दो बच्चों की मां मनु गोयल के विवाहेतर प्रयोगों के माहौल में जिस बौद्धिकता का घटाटोप खड़ा किया गया है, उसकी तीसरी दुनिया की स्त्री की मुक्ति के लिए कोई प्रासंगिकता ढूंढे नहीं मिलती। चितकोबरा के नारीवाद की जड़ें न पूरब में हैं न पश्चिम में और न ही उसमें कोई गंभीरता है। गरीबी के व्यंग्यचित्र उपन्यास की सामाजिक चेतना के उथलेपन की त्रासद अभिव्यक्तियाँ हैं।"[10] यही पर यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि किसी स्त्री का, स्त्री अस्मिता का पक्षधर होने के तर्क से, अपने लेखन में स्त्री मुक्ति को देह मुक्ति का पर्यायवाची मान लेना उचित है या देहमुक्ति को स्त्री मुक्ति के एक मोर्चे के रूप में स्वीकार कर अन्य मुद्दों जैसे सामाजिक समानता ,राजनीतिक सत्ता में बराबरी का हस्तक्षेप, आर्थिक स्वाधीनता एवं पारिवारिक

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 1, Issue 10, October 2022

दायित्व को भी अपने लेखन में शामिल करें। विमर्श अपने पारिभाषिक अर्थ में हीं सशक्तिकरण का द्योतक है और शक्तिशाली या स्वतंत्र होना निरंकुश होना नहीं, बल्कि जिम्मेदार होना होता है। स्त्री विमर्श के मंचीय शोर एवं लेखन क्षेत्र में स्त्री अस्मिता से जुड़े प्रश्न पीछे छूटते चले जा रहे हैं। यहां पर मैं भी विभूति नारायण राय के एक उस साक्षात्कार अंश का उल्लेख करना चाहूंगा जो हाल ही में बड़े विवाद का विषय बना था। विवादों के बावजूद उन्होंने जो कुछ कहा है वह स्त्री चिंतन के देह वादी विमर्श तक सीमित हो जाने के संकट को चिन्हित करता है–" जैसे जैसे स्त्रियां व्यक्तिगत संपत्ति क्रय शक्ति की मालकिन होती जा रही है, धर्म द्वारा प्रतिपादित वर्जनाएं टूट रही और लुत्फ लेने की प्रवृत्ति उनमें सी बढ़ रही है। पिछले वर्षों में हमारे यहां जो भी विमर्श हुआ है, वह मुख्य रूप से शरीर केन्द्रित है। यह भी कह सकते हैं कि यह विमर्श बेवफाई के विराट उत्सव की तरह है। ... देह का विमर्श करने वाली स्त्रियां भी आकर्षण, प्रेम और आस्था के खूबसूरत संबंध को शरीर तक केंद्रित कर रचनात्मकता की उस संभावना को बाधित कर रही है जिसके तहत देह से परे भी बहुत कुछ ऐसा घटता है जो हमारे जीवन को अधिक सुंदर और जीने योग्य बनाता है।"11 प्रभा खेतान ने भी स्त्री की देह मुक्ति के संदर्भ में अपने विचार इस तरह रखे हैं –"कोई स्त्री अपने आपको अपने नंगेपन से यदि मुक्त करती है तो उसके लिए यही कहा जाएगा कि वह अन्य जीव–जंतुओं की तरह मादा है और इसी की ओर अग्रसर हो रही है। जब वह अन्य सांस्कृतिक भूमिकाओं को अपनाती है तब अपने जीवन की संभावनाओं को तौलती है। तब वह स्त्री होने की ओर अग्रसर है।"12

बीएन राय ने रचनात्मक सरोकारों के संदर्भ में या प्रभा खेतान ने सिद्धांत रूप से जो कुछ कहा है उस पर बड़ी ईमानदारी से सोचे जाने की जरूरत है। आजकल हिंदी फिल्मों में प्रेम दर्शाने के लिए पुराने फिल्मी संकेत मसलन दो फूलों का आपस में टकराना, पेड़ के पीछे नायक नायिका का हाथ मिलाना आदि नहीं दिखाया जाता बल्कि उनका खुला और उन्मुक्त रूप दिखाया जाता है और तर्क दिया जाता है कि आज के संचार क्रांति के दौर का युवा समाज ज्यादा उन्मुक्त था और खुलापन चाहने वाला है अतः यहां ऐसे संकेतात्मक प्रेम प्रदर्शन से काम नहीं चलने वाला है। वस्तुतः यह बाजार का अपने मूल चरित्र को छिपाने के लिए गढ़ा गया तर्क है। पटकथा की मांग के नाम पर स्त्री के देह प्रदर्शन को जबरदस्ती घुसा कर वह ज्यादा से ज्यादा विवाद, पब्लिसिटी, दर्शक और पैसा बटोरना चाहते हैं जिसमे समाज सापेक्षता जैसे मूल्य कहीं नहीं हैं। उत्तर पूंजीवादी बाजार हमेशा चाहेगा कि स्त्री विमर्श देह विमर्श के स्तर पर उतर आए ताकि वह स्त्रियों का अपने हिसाब से उपयोग कर सके। यह अपने आप में बड़ा खतरनाक विमर्श है। विमर्श ऐसे सुचिंतित वैचारिक निष्कर्षों को कहा जाता है जो दूसरे लोगों या समाजों को उस निष्कर्ष के अनुसार सोचने, काम करने या व्यवहार करने के लिए मानसिक–दृष्टि से निर्भर कर देते हैं। इस तरह देखें तो तथाकथित प्रोग्रेसिव कही जाने वाली स्त्रियों व स्त्री विचारकों को इस बाजारवादी विमर्श में पूर्णतः अपने कब्जे में कर लिया है। पूरे बाजार की संरचना पुरुषवादी है। पुरुष ही बाजार के मानकों का निर्माण करता है। वह कभी नहीं चाहेगा कि स्त्री अपनी मुक्ति के अन्य मोर्चों पर सक्रिय हो। अगर होगी तो बाजार की मुनाफावसूली कम पड़ जाएगी। यहां पर डॉ. राजेंद्र कुमार के शब्दों का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा –"आज भूमंडलीकरण की आंधियां चारों ओर से जो हमें घेर रही हैं। ऐसे में

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 1, Issue 10, October 2022

जो उपभोक्तावादी संस्कृति की हिमायती शक्तियां हैं, विकास के नाम पर भूमंडलीकरण को बढ़ावा देने वाली शक्तियां हैं उनका हित इसी बात में लगता है कि स्त्री विमर्श को देहवादी विमर्श तक रिड्यूस किया जाए। जो हमारा आज का समय है उसमें व्यक्ति की अस्मिता को विचार से नहीं उपभोग से जोड़ दिया गया है & I consume so I am, मैं उपभोग करता हूं इसलिए मैं हूं। जहां पर यह सूत्र बनेगा वहां पर देहवादी विमर्श को ही बढ़ावा दिया जाएगा। सारे विज्ञापनों को देख लीजिए। स्त्रियों के प्रसाधनों को लेकर जो विज्ञापन आता है उसमें या तो अंग्रेजी के शब्द अधिक होते हैं या फिर बोलचाल के हिंदी के तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक होता है। केवल एक शब्द ऐसा है जो बराबर अपनी पूरी तत्समता के साथ विज्ञापन तंत्र में है – त्वचा शब्द। यह क्या हो रहा है? यह कौन लोग हैं जो पूरे विज्ञापन तंत्र में, संचार माध्यमों में स्त्री को देह मात्र ही कह कर प्रयोग कर रहे हैं?"13 कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह पुरुष सोच केंद्रित बाजारवादी विमर्श है। बाजार ने स्त्री विमर्श के जिन नए मानकों को बढ़ावा दिया है उसमें उसका मुख्य फोकस अच्छी खासी क्रय शक्ति रखने वाली ऊंचे तबके की स्त्रियां हैं। एक मोहक मायाजाल गढ़कर, प्रतिनिधि के तौर पर मॉडल छवि वाली कुछ स्त्रियों को ग्लैमर और पैसे का चारा डाल कर वह मॉडर्न और अग्रणी कहीं जाने वाली पूरे स्त्री समुदाय को अपने घेरे में ले लेता है जिससे उसके उत्पाद की अधिकतम खपत हो सके । इसके मूल में बाजार की यही सोच काम करती है कि इन कुछ प्रोग्रेसिव महिलाओं का सशक्तिकरण और स्त्री मुक्ति के और मोर्चों से ध्यान खींचा जा सके। क्या कोई भी बाजार कभी भी कम पढ़ी–लिखी दलित महिलाओं, गांव की पिछड़ी महिलाओं को केंद्र में रखकर कोई कार्य योजना तैयार करता है? स्पष्टतः नहीं। क्योंकि वहां न तो क्रय शक्ति है और न तो उत्पादों की खपत के लिए उपभोक्ता बाजार। इसके उलट जिनके पास यह है उनको अपनी जाति (स्त्री) के मूल से जुड़ने से रोकने में ही उसका लाभ है। क्योंकि अगर वे उससे जुड़ गई और स्त्री मुक्ति के असली मोर्चे को पहचान गई तो उस बाजार के उत्पादों को खरीदेगा कौन जो खासकर उन्हीं के लिए तैयार किया गया है। बाजार तो चाहता ही यही है कि पढ़ी–लिखी स्त्री अपने आप को देहवादी विमर्श तक सीमित रखें ताकि एक तरफ तो उन्हें बौद्धिक खुराक भी मिलती रहे और दूसरी तरफ प्रोग्रेसिव कहलाने का गौरव भी और इसके आड़ में बाजार का षड्यंत्र कामयाब होता रहे। बकौल रोहिणी अग्रवाल –"ग्लैमर और पूंजी की दौड़ में बदहवास दौड़ती स्त्री उसके (मीडिया पोषित बाजार) आदेशों की मोहताज हैं। वह अपनी ही गुलामी के नए शस्त्र को आधुनिक रंगीन पैकेज में घर–घर पहुंचा रही हैं। स्त्री लेखन पुरुष व्यवस्था के नव्यतम षड्यंत्र को लेकर खामोश है।"14

इस तरह देखें तो पता चलता है कि स्त्री विमर्श का देह विमर्श तक सिमट जाना एक खतरनाक और भयावह स्थिति को जन्म देता है जिसके लिए उत्तर आधुनिक बाजार हमेशा प्रयत्नशील है। इसलिए स्त्री विमर्श जो अपने मूल में एक समाजशास्त्रीय विमर्श है, को बाजार के कब्जे से स्वयं को मुक्त कर सजग रूप से बाजार का उपयोग स्त्री मुक्ति के अन्य मोर्चों पर फतह हासिल करने के लिए सीखना होगा। स्त्री विमर्श बहुत ही जटिल विमर्श है। दलित वर्ग की स्त्रियां, शहरों के निम्न आय वर्ग वाली स्त्रियां, कामकाजी स्त्रियां– सबकी अपनी–अपनी वर्गीय समस्याएं हैं। बाजार स्त्रियों का उपयोग किस तरह इन स्त्रियों का आर्थिक शोषण करने के लिए कर रहा है, एक आम स्त्री की

सुरक्षा और स्वतंत्रता को बाधित कर रहा है– यह सब समझ कर इन मुद्दों की तरफ ध्यान देना पड़ेगा तभी स्त्री विमर्श का कोई सार्थक मतलब निकल सकेगा।

संदर्भ –

1. पृष्ठ –89, डॉ. प्रणयकृष्ण– उत्तर औपनिवेशिकता के स्रोत और हिंदी साहित्य, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008
2. पृष्ठ 67, 'नया ज्ञानोदय' पत्रिका, अंक 86, अप्रैल 2010
3. पृष्ठ 61, सुभाष शर्मा– 'नया ज्ञानोदय' पत्रिका, जनवरी 2009
4. नैतिकता के कोलाहल में देह विमर्श की धमक, 'हंस' पत्रिका, फरवरी 2009
5. पृष्ठ 178, औरत के हक में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996
6. पृष्ठ 22–23, 'त्रिया चरित्र हमारी रणनीति है' (स्त्री विमर्श विविध पहलू ,सं.– कल्पना वर्मा) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009
7. पृष्ठ 78, 'साक्षात्कार' पत्रिका, जनवरी 2006
8. पृष्ठ 57, 'हंस' पत्रिका, फरवरी 2009
9. पृष्ठ 142, आधुनिक हिंदी आलोचना के बीज शब्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994
10. पृष्ठ 289, उत्तर औपनिवेशिकता के स्रोत और हिंदी साहित्य
11. पृष्ठ 30, ;नया ज्ञानोदय; बेवफाई सुपर विशेषांक , अगस्त 2010
12. पृष्ठ– 48, 'प्रगतिशील वसुधा' पत्रिका , अंक 78
13. पृष्ठ 15–16, महिला लेखन के संदर्भ में स्त्री विमर्श (स्त्री विमर्श विविध पहलू, सं. कल्पना वर्मा)
14. पृष्ठ 57 , 'हंस' पत्रिका, फरवरी 2009